ANVESHA-A Multidisciplinary E-Journal for all Researches Volume 2, Issue 1, June, 2021
Bi annual, Bi lingual, Peer reviewed, Referred Journal
Available online on: www.anveshaejournal.com e-ISSN 2582-6719

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का शिक्षा-दर्शन

डॉ. राजेश कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग

रामलाल आनंद कॉलेज,

दिल्ली विश्वविद्यालय

rsgautam74@gmail.com

शोध सारांशः

मनुष्य के जीवन में शिक्षा का बहुत महत्व है जिसके आधार पर वह अन्य व्यक्ति, वस्तु और पदार्थों के साथ संबंध अपनी समझ से विकसित करता है और वह अपने विवेक को और अधिक गरिमापूर्ण बना सकने में कामयाब होता है। शिक्षा और समाज में अधिगम की प्रक्रिया का अनुकरण किया जाता है। छात्र अपने अध्ययन के स्तर पर तभी कामयाब हो सकता है जब वह अध्ययन और सीखने की सभी विधियों का प्रयोग करेगा। भारतवर्ष में शिक्षा ग्रहण 'गुरू-शिष्य' परम्परा के रूप में दी जाती थी, परन्तु आज अध्ययन की अनेक वैज्ञानिक विधियाँ विकसित हो गई हैं जिसके आधार पर भारत ने वैश्विक स्तर पर अपनी पहचान बनाई है। इसके साथ-साथ आज इस बात की भी अपेक्षा की जाती है कि भारतीय शिक्षा पद्धति को और किस प्रकार से सुदृढ़ किया जा सकता है जिसके आधार पर भारतीय नागरिक न केवल आधुनिक शिक्षा जगत में भी अग्रणी हो, बल्कि उसमें सामाजिक, सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों का भी विकास हो सके। शिक्षा के इस आधुनिक दर्शन को यदि कहीं प्रतिफलित होता दिखाई देता है तो वह पं. दीनदयाल उपाध्याय के शिक्षा दर्शन में दिखाई देता है। निश्चित तौर पर उन्होंने अपने विचारों और अनुभवों से भारतीय शैक्षणिक जगत में नया रूप और आकार देने का प्रयास किया है।

बीज शब्दः

शिक्षा एवं अधिगम, अध्ययन की विविध शैलियाँ, शैक्षणिक दृष्टिकोण और प्रयोग

प्रस्तावनाः

समाज में शिक्षा का सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दर्शन है। वैश्विक स्तर पर इसकी अनेक अवधारणाएँ हैं और यह प्रत्येक देश और समाज की सांस्कृतिक तथा भौगोलिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है कि किस समाज को किस रूप में शिक्षित करके उसके जीवन को और अधिक बेहतर बनाया जा सकता है। जहाँ तक भारत की बात है यहाँ अनेक मनीषी विद्वानों ने अपने ज्ञान से संसार को आलोकित किया है। आदिगुरू शंकराचार्य का वेदान्त, रामानुजन का गणित, आचार्य वराहमिहिर का ज्योतिष शास्त्र, महर्षि पतंजलि का योग शास्त्र और धन्वंतरि का आयुर्वेद शास्त्र आदि विषयों का ज्ञान एक मनुष्य के जीवन को समाज में और मूल्यवान बना सकने में समर्थ हैं। भारत में शिक्षा की शुरूआत गुरूकुल से होती है और आज के समय यह किंडर गार्डन, मोण्टेसरि और बेसिक रूप में देखी जाती है, परन्तु इसके साथ यह भी सच है कि आधुनिक शिक्षा की इन विविध शैलियों के प्रचलन में भी भारत की पुरातन शैक्षणिक पद्धितियों का सहारा लिया जाता है। यही कारण है कि पं. दीनदयाल उपाध्याय शिक्षा का एक आदर्श प्रस्तुत करतें हैं जो न केवल हमें सामाजिक स्तर पर आत्मनिर्भर बनाता है, अपितु विज्ञान के और नजदीक भी लेकर जाता है। वे अधिगम यानि कि सीखने की प्रक्रिया पर बल देते हैं। उनका मानना है कि शिक्षा का संबंध मात्र साक्षर होने से नहीं हैं। इसका संबंध जीवन में सीखने और उपार्जन के रूपों से भी है। शिक्षा मनुष्य को आर्थिक मजबूती देती है, उसके ज्ञान का शोधन करती है और उसे समाज में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है। आज के भौतिक युग में शिक्षा को केवल अर्थोपार्जन के रूप में ही जानने का प्रयास होता है परन्तु, यह

अर्थोपर्जन में सहायक तो है इसके साथ-साथ यह भी समझना आवश्यक है इसका अतिरेक नहीं होना चाहिए। इस पर पं. दीनदयाल जी का विचार है कि 'मनुष्य के जीवन का यह सर्वांगपूर्ण विचार ऐसी किसी भी अर्थ रचना की कल्पना नहीं कर सकता जिसमें नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना किए बिना ही मनुष्य को सुखी बनाया जा सके।'[प]

किसी भी छात्र में सृजनशीलता का निर्माण करना ही शिक्षा का उद्देश्य है। यह समाज के संसर्ग से ही हासिल किया जा सकता है। अधिगम की प्रक्रिया के कई मानक होते हैं और समाज उनमें से एक है। सभी जीव-जन्तुओं में केवल मनुष्य ही अनुकरण करने वाला प्राणी है तो निश्चित रूप में वह अन्य प्राणियों से सृजनशील भी अधिक है। अतः मनुष्य को शिक्षित करने के के तीन नियामक हैं- छात्र, विषय वस्तु और शिक्षण। शिक्षण अधिगम की पूरी प्रक्रिया इन तीन कारकों पर ही निर्भर करती है। आधुनिक ज्ञान विज्ञान की शिक्षा के भी यही तीन उपादेय हैं, इनके बिना शिक्षा और उसके महत्व की कल्पना नहीं की जा सकती। आज के समय विद्यार्थी को केन्द्र में रखकर उसकी अभिरूचियों, योग्यताओं और वर्ग भिन्नता के आधार पर उसका शैक्षणिक विकास किया जाता है। पं. दीनदयाल इन सभी शैक्षणिक पद्धतियों का आकलन करते हैं और अपना शिक्षा का दर्शन और उसकी भारतीय दृष्टि को विकसित करने का प्रयास करते हैं।

विद्यार्थी को प्रारम्भिक शिक्षा अपनी मातृभाषा में देना ही समाज के लिए श्रेयस्कर है। पं. दीनदयाल उपाध्याय जी इसी शैक्षणिक दृष्टिकोण का समर्थन करते है और इसी का प्रचार करने के वे पक्षधर भी रहे हैं। उनका मानना है कि ''इस दृष्टि से यह स्वाभाविक है कि शिक्षा का माध्यम स्वभाषा ही हो सकती है, भाषा केवल अभिव्यक्ति का माध्यम ही नहीं, वह स्वयं की अभिव्यक्ति है। भाषा के एक-एक शब्द, वाक्य रचना, मुहावरों आदि के पीछे समाज के जीवन की अनुभूतियाँ राष्ट्र की घटनाओं का इतिहास छिपा हुआ है, फिर स्वभाषा व्यक्ति को अलग अलग प्रकोष्ठों में नहीं बाँटती।'[पप] स्पष्ट है कि मातृभाषा में शिक्षा से समाज के सभी वर्गों को चाहे वे मन्द बुद्धि के छात्र हैं या फिर अभाव के कारण शिक्षा से वंचित हैं, उन सभी की रूचियों को अपनी भाषा में ही समझा और समझाया जा सकता है, क्योंकि मातृभाषा किसी भी शिक्षा का एक सरलतम माध्यम है। इसलिए माना जा सकता है कि यदि छात्र की शैक्षणिक अपेक्षाओं को जानना है तो केवल स्वभाषा ही उसका मुख्य सहारा हो सकती है।

क्रियात्मक शिक्षण विधि उपाध्याय जी के शिक्षा दर्शन का मुख्य आधार है। इसका संबंध सामाजिक अधिगम और व्यावहारों से है। काव्यशास्त्र में काव्य के तीन हेतु- प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास माने गए हैं। क्रियात्मक शिक्षण विधि में इन तीनों का अनुपालन है। अतः यह विधि शिक्षण में परिश्रम को बढ़ावा देती है तथा इसके साथ-साथ विद्यार्थी मनोबल और मानसिक स्तर को और अधिक सुदृढ़ करती है। 'पाठ्यक्रम की आधुनिक धारणा विस्तृत तथा व्यापक है, इसमें कक्षा के अन्दर जो भी अनुभव छात्र प्राप्त करता है वह तो सम्मिलित है ही, साथ ही कक्षा के बाहर का अनुभव भी शामिल है। सभी बौद्धिक विषय विधि कौशल अनेकानेक कार्य पढ़ना, लिखना, शिल्प, खेलकूद आदि क्रियाकलाप पाठ्यक्रम के क्षेत्र के अन्तर्गत हैं .....कक्षा, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, क्रीड़ा क्षेत्र और विद्यालय प्रांगण में प्राप्त किए जाने वाले समस्त अनुभवों को अपने आंचल में समेट लेता है और व्यैक्तिक तथा सामाजिक क्षेत्रों के सभी उद्योगों, व्यवसायों, कौशलों एवं अभिवृत्तियों को अपनी परिधि में समेट लेता है। ..... इसी माध्यम से हम जीवनादर्शों की प्राप्ति का प्रयास करते हैं।'[पपप] शिक्षा की यह विधि सामाजिक व्यवहारों से पूर्ण है और विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास करने में सहायक सिद्ध होती है। आधुनिक शिक्षा में जहाँ आज रचनात्मक कौशल पर बल दिया जाता है, वह केवल इसी विधि से ही सफल हो सकता है। वास्तव में देखा जाये तो यह महात्मा गांधी के दर्शन के करीब भी है, जिसमें वे स्वेदशी उत्पादन, मातृभाषा और लघु कुटीर उद्योग की परिकल्पना को साकार करना चाहते हैं। 'डाल्टन प्रोजेक्ट', और 'हयूरिस्टिक' आदि शिक्षण विधियाँ इसी का अनुकरण करती हैं।

मनुष्य का शिक्षाभिमुख होना समाज के लिए बहुत आवश्यक है। निरक्षरता समाज में पिछड़ेपन का मुख्य कारण होती है, इसलिए समाज के चहंमुखी विकास के लिए उसका शिक्षित होना जरूरी है। इस कारण पं. दीनदयाल उपाध्याय जी आगमन निगमन विधि पर बल देते हैं। जैसा कि ऊपर बताया गया है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी होने के कारण उसमें अनुकरण की

प्रक्रिया सबसे अधिक होती है और वह आगमन निगमन विधि से विषय वस्तु को आसानी से सीख सकता है। शिक्षण की इस विधि में कुछ उदाहरणों को छात्रों के सामने प्रस्तुत किया जाता है और वे इससे संबंधित सामान्य तत्वों को समाज के बीच में से चिन्हित करते है, जिससे कि वे सिद्धान्त का रूप ले सकें। अधिगम की यह प्रक्रिया छात्रों के लिए रूचिकर है और इसमें क्लिष्टता का अभाव भी है। अपने सामाजिक और सांस्कृतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के लिए आजकल इसी विधि का प्रयोग किया जाता है। उपाध्याय जी सामाजिक उद्देश्यों को हासिल करने के लिए ऐसे कारकों की तलाश करते हैं जो विकास पथ पर छात्र को प्रेरित कर सकें। अतः शिक्षण की विधियाँ भी उनके इस ध्येय को पूर्ण करने में सक्षम हैं।

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी अपने देश और समाज की स्थापनाओं के अंगीकरण पर बहुत विश्वास करते थे। इसलिए उनके लिए यह आवश्यक भी था कि अपने शैक्षणिक दृष्टिकोण में अपने साहित्य और कलाओं का स्थान दिया जाना चाहिए। साहित्य समाज का दर्पण होता है, जिससे पाठक अपने समाज की यथार्थ स्थिति और होने वाले सांस्कृतिक परिवर्तनों को जानता है। उनका मानना है कि भारत का साहित्य विश्व का सबसे समृद्ध और पुराना साहित्य है। संस्कृत, तमिल, तेलगू, मराठी और बांग्ला आदि भाषाओं में भारतवर्ष की पुरातन संस्कृति और इतिहास का व्यापक और विस्तृत वर्णन मिलता है। भारतीय चित्रकला, भित्ति कला और ललित कलाओं का चित्रण भारतीय साहित्य की विशेषता है। जब विद्यार्थी भारतीय ज्ञान की विरासत से परिचित होगा तो निश्चित रूप से उसके मन राष्ट्र प्रेम पैदा होगा और उसकी आस्था भारतीय रूपों में होगी। नाटक साहित्य, कथा रूपक और महाकाव्यों को आज आधुनिक दृश्य-श्रव्य माध्यमों से पाठकों और दर्शकों के सामने प्रभावशाली प्रस्तुति देकर इस विधि को और श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करना चाहिए। उनके अनुसार 'प्राचीन काल के कथा और नाटक तथा आज के रेडियो, सिनेमा, समाचार पत्र आदि सभी इससीमामें आ जाते हैं।'[पअ] दीनदयाल जी का शिक्षा दर्शन समाज की बुनियादी जरूरतों का आग्रह करता है और उसके मानकों को सामाजिक बनाता है।

भारत की बुनियादी शिक्षण विधि के अतिरिक्त पं. दीनदयाल जी वैश्विक आवश्कता के अनुरूप वैज्ञानिक विधि का भी समर्थन करते हैं। आज का युग सूचना और प्रौद्योगिकी का युग है और वैश्विक स्तर पर प्रभावी होने के लिए इस विधि को सीखने का माध्यम बनाना आवश्यक है। इस विधि से देश की अर्थव्यवस्था को नया रूप दिया जा सकता है और देश को वैश्विक प्रतिस्पर्धा में अग्रिम पंक्ति में ले जाया जा सकता है। यह विधि तर्क आधारित है और इसमें परिणाम और कल्पना का कोई मेल नहीं होता है। इसलिए आज चिकित्सा, अभियान्त्रिकी, भूगोल, भूगर्भ शास्त्र, अर्थशास्त्र ही नहीं सामाजिक और मानविकी विषयों में भी शिक्षण की इस विधि का प्रयोग किया जाता है। समाज के नवनिर्माण की परिकल्पना और नवीन विचारों तथा विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले नवाचारों और सिद्धान्तों इस विधि के बल पर ही जाना और समझा जा सकता है।

निष्कर्षः

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी का शिक्षा दर्शन मात्र सैद्धान्तिक नहीं है, बल्कि वह सामाजिक व्यवहारों के अनुरूप है। वे किसी एक मॉडल का अनुसरण नहीं करते हैं। उनके विचार में भारत में प्राचीन और आधुनिक शिक्षण विधियों का समन्वित रूप ही देश के ढांचे को और अधिक सुदृढ़ बना सकता है। प्राचीन दर्शन और आधुनिक ज्ञान विज्ञान के बल के अतिरिक्त रचनात्मक कौशल के आधार पर छात्र के जीवन को व्यापक रूप से बेहतर बनाया जा सकता है। इसलिए कहा जा सकता है कि दीनदयाल जी का शिक्षा दर्शन भारत की सांस्कृतिक स्थितियों के अनुरूप है और इसका महत्व इसके अनुप्रयोग में दिखाई भी देता है।

संदर्भ ग्रन्थसूची :-

- भारतीय अर्थनीति विकास की एक दिशा, पं. दीनदयाल उपाध्याय, लोकहित प्रकाशन, लखनऊ, पृ. २२
- राष्ट्र चिंतन, पं. दीनदयाल उपाध्याय, पृ. १०२
- शिक्षा के सिद्धान्त पाठ्क्रम, पाठक एवं त्यागी, पृ. ३८२
- राष्ट्र चिंतन, पं. दीनदयाल उपाध्याय, पृ. १०१